9 अभिकल्प तथा विकास

इक्कीसवीं सदी अपने साथ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में तीव्र परिवर्तन, मशीनों पर निर्भरता तथा प्राकृतिक संसाधनों का इस प्रकार दोहन एवं खपत लाई है कि वे अब स्थायी नहीं रहे हैं। विगत में शिल्प क्षेत्र को कई लोगों द्वारा इक्कीसवीं सदी के लिए एक अव्यावहारिक आर्थिक क्रियाकलाप के रूप में निरस्त कर दिया गया था।

भारत की कामकाजी जनसंख्या में कारीगरों की संख्या अभी भी बीस लाख है। अत: इस क्षेत्र का विकास इस प्रकार किया जाना चाहिए कि सैकड़ों कुशल कारीगरों को स्थायी रोज़गार मिले। शिल्प निर्माता तब तक आर्थिक रूप से व्यावहारिक नहीं हो सकते, जब तक कि उनके उत्पाद विपणन योग्य न हों। उत्पाद केवल तभी विपणन योग्य हो सकता है, जब वह उपभोक्ता के लिए आकर्षक हो अर्थात ऐसा तभी हो सकता है जब पारंपरिक कौशल का अनुकूलन तथा 'अभिकल्पन' समकालिक उपभोक्ता की रुचियों तथा आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर किया जाए। अभिकल्प (डिज़ाइन) का अर्थ मात्र सुंदर नमूने बनाना नहीं है – यह तकनीक को प्रयोग कार्य के साथ संबद्ध करना भी है।

पारंपरिक शिल्प के क्षेत्र में डिज़ाइन तथा विकास के ये दो पहलू सदैव समानार्थक नहीं होते। अभिकल्प विकास की ओर उन्मुख हो सकता है तथा विकास को अभिकल्पित किया जाना चाहिए। तथापि, डिज़ाइन तथा विकास में कार्य तथा उत्तरदायित्व के बीच संघर्ष उत्पन्न हो सकता है। किसकी सृजनात्मकता को अभिव्यक्त किया जाएगा – विकासकर्ता की, डिज़ाइनर की या शिल्पकार की? ग्राहक कौन है – उपभोक्ता, जो सर्वाधिक प्रतिस्पर्धी कीमत पर एक असामान्य तथा रोमांचक उत्पाद खरीदना चाहता है अथवा शिल्प समुदाय, जिसे अपने उत्पाद के लिए एक ऐसे बाज़ार की आवश्यकता है, जो यथासंभव पारंपरिक बाज़ार के समरूप हो? यदि ऐसा होता है तो शिल्प समुदाय को सतत भिन्न डिज़ाइन हस्तक्षेपों की आवश्यकता न होगी अथवा वे उन सामाजिक, सौंदर्यपरक तथा सांस्कृतिक आधारों के साथ संघर्षरत रहेंगे, जिनसे वे उत्पन्न हुए हैं।

© NCERT not to be republished

शिल्पी समुदाय की अनेक प्राथमिकताएँ हैं, जैसे भोजन, कपड़ा, आश्रय, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा आर्थिक स्थिरता। शिल्प विकास क्षेत्र का शिल्प समुदाय के इन्हीं अत्यंत वास्तविक सरोकारों के प्रति संवेदनशील होना आवश्यक है।

अतः शिल्पियों को डिज़ाइन तथा उत्पादन के प्रत्येक पहलू की जानकारी होनी चाहिए तथा उन्हें उस उत्पाद के प्रयोग की समझ होनी चाहिए, जो वे बना रहे हैं। स्वयंसेवी संस्थाओं या डिज़ाइनरों को भी शिल्प का, उत्पाद का तथा जिस बाज़ार में वे प्रवेश करने का प्रयास कर रहे हैं, उसका अध्ययन करना चाहिए।

शिल्पकारों का बदलता स्वरूप

प्राचीन भारत में प्रत्येक व्यक्ति की समाज में एक अंतर्हित रूप से परिभाषित भूमिका होती थी, जो जन्म द्वारा निर्धारित थी। शिल्पकारिता एक परंपरा या विरासत थी, जो छन्दोमाया (लय, संतुलन, अनुपात, सुमेलता तथा कौशल के नियम) में सदियों की कठोर प्रशिक्षुता से विकसित हुई। यह प्रशिक्षुता समाज की संरचना तथा कानूनों द्वारा नियंत्रित तथा संरक्षित थी। इस समाज में निपुण शिल्पकार, नए प्रशिक्षु तथा कुशल, किंतु अप्रेरित कर्मकार सभी का एक स्थान तथा प्रयोजन था। आज ये सभी गुण शिल्पकार में एक साथ समाहित होने आवश्यक हैं, जिनमें उसका उद्यमी बनना भी समाहित है।

शिल्पकार को एक कलाकार का दर्जा प्राप्त था। समाज के भीतर तथा बाहर दोनों में कठोर नियमों तथा वंशानुगत व्यवस्थाओं वाले समाज के सदस्य के रूप में समुदाय तथा इसके उत्पाद संरक्षित थे तथा गुणवत्ता नियंत्रित थी। कलाकारों को संरक्षकों की जानकारी थी। ग्राहक सन्निकट ही मौजूद थे, उनकी जीवन शैलियाँ कलाकारों की जीवनशैलियों से उल्लेखनीय रूप से बहुत भिन्न नहीं थीं। चाहे शिल्पकार कुशलतापूर्वक साधारण ग्रामीण बर्तन उपलब्ध कराते थे या मंदिर अथवा सुल्तान के लिए रत्नजड़ित आभूषण बनाते थे या कलात्मक वस्तुएँ, यह पारंपरिक आवश्यकता, बोध तथा सराहना पर आधारित एक समर्थनकारी अंतर्निभरता थी।

शिल्पकार स्वयं एक डिज़ाइनर था तथा कलाकृतियों का आकार, जब पूर्णतया उपयुक्त बन जाता था, तब उसमें वह सजावट का कार्य करता था। सौंदर्य तथा व्यवहार प्राकृतिक रूप से सम्मिश्रित होते थे, न कि कृत्रिम रूप में।

डिज़ाइन निविष्टियों की आवश्यकता क्यों है

आज पारंपरिक कौशलों को व्यवहार में ला रहे अधिकांश शिल्पकार मशीनों, प्रतिस्पर्धी बाज़ारों या बड़े पैमाने पर उत्पादित वस्तुओं, विदेशी फ़ैशनों के

लिए उपभोक्ता की ललक के साथ जूझ रहे हैं तथा वे अब अपने वर्ग के समाज, दरबार अथवा धार्मिक संस्थाओं के व्यावहारिक संरक्षण द्वारा संरक्षित नहीं हैं। शिल्पी समुदाय को घटते क्रयादेशों तथा अपनी कला के घटने की समस्याओं का लगातार सामना करना पड़ रहा है।

शिल्पी समुदाय अपनी स्वयं की जीवनशैलियों से पृथक उत्पाद बना रहे हैं तथा उन्हें अपने से पृथक तथा अत्यधिक प्रतिस्पर्धी बाज़ारों में बेच रहे हैं। उनके अपने जीवन तथा रुचियों में भारी रूपांतरण हुए हैं, जिससे वे अपने कौशलों तथा उत्पादों से और भी दूर हो गए हैं। एक पारंपरिक जूते का निर्माता अभी भी जूतों की जोड़ी पर सुनहरे मोर काढ़ता है, किंतु वह स्वयं संभवतः प्लास्टिक के गुलाबी सैंडल पहने होगा। परिणामतः आज शिल्प का विघटन हुआ है। उदाहरणार्थ, धातु का दीया, जो पूजा की एक पारंपरिक रीतिगत वस्तु थी, आज एश ट्रे में रूपांतरित हो गया है तथा पटरी पर मात्र दस रुपए में बिक रहा है।

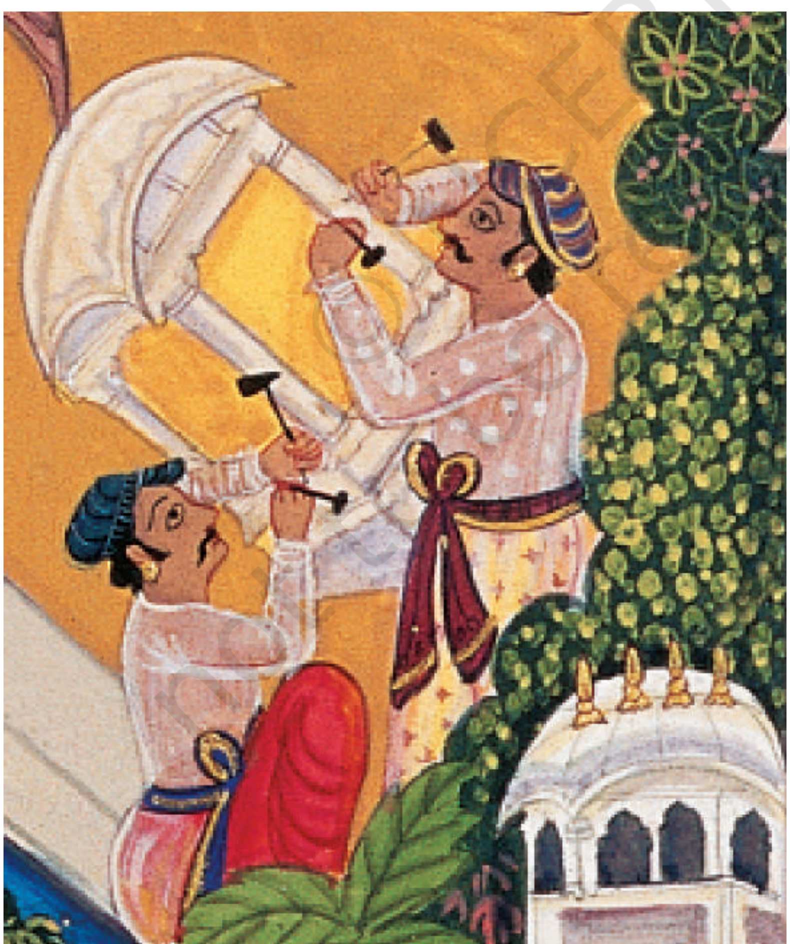

डिज़ाइन निविष्टियाँ – भीतर या बाहर से?

क्या सदियों की कुशल परंपरा वाले शिल्पकारों को बाहरी प्रेरणा स्रोतों की आवश्यकता है? पहले हस्तक्षेपों द्वारा शिल्पों का ह्रास नहीं होता था, जो बाह्य अभिकरणों द्वारा अच्छे इरादे से किए जाते थे।

तथापि, परंपरा एक संभावित आरंभ होनी चाहिए, बंधन नहीं। यदि शिल्प को उपयोगिता आधारित तथा आर्थिक रूप से स्थिर बनना है, तो यह स्थायी नहीं हो सकता। शिल्प सदैव बाज़ार में हो रहे परिवर्तनों, उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं, फ़ैशन एवं प्रयोगों के प्रति जागरूक रहा है। आज, उत्पादक और उभोक्ता के बीच बढ़ती हुई दूरी के कारण शिल्प पहले जैसी गति से बदलाव विकसित लाने में सक्षम नहीं है। अब डिज़ाइन और उत्पाद विकसित करने वालों की यह भूमिका हो जाती है कि वे बारीकी से इन बदलावों को शिल्पकार तक पहुँचाएँ, जो नए बाज़ारों और उपभोक्ताओं से भौतिक रूप से हटा दिए गए हैं।

कला, डिज़ाइन तथा विपणन की औपचारिक शिक्षा प्राप्त व्यावसायी लोग हैं, जिनके पास तकनीकी कौशल और औज़ार हैं, जिससे वे शिल्प समुदाय को शिल्पकारों के हित में डिज़ाइन, नवीन प्रयोग, विदेशी अथवा शहरी बाज़ारों एवं समसामयिक विपणन के प्रचलन से परिचित करा सकते हैं। शिल्पियों के साथ काम करके डिज़ाइन सलाहकार को अपनी सृजनात्मकता को दबाकर शिल्पकारों में जागृति लानी होगी। नवीन प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहन हेतु शिल्पकारों को डिज़ाइन के विभिन्न नमूने देने होंगे, न कि नमूने की नकल उतारने का दबाव बनाने के लिए। शिल्प समुदाय शिल्पों की विकास प्रणाली का एक हिस्सा होना चाहिए और प्रत्येक चरण में शिल्पकारों को अपने मस्तिष्क एवं कल्पना तथा हाथों का प्रयोग करने के लिए उत्साहित करना चाहिए।

बिजली के प्रयोग रहित फ़्रिज

वांकानेर, गुजरातवासी कुम्हार, मनसुख भाई प्रजापति ने एक ऐसे शीत यंत्र का आविष्कार किया है, जिसे 'मिट्टीकूल' कहते हैं। इसे बनाने की विधि इस प्रकार है – मनसुख भाई ने विभिन्न प्रकार की मिट्टी को मथा। एक बार जब मिट्टी मिल गई, उसे छानकर सुखा दिया। अब कच्ची मिट्टी के सूखे ढोके को एक लम्बाकार आकार में गढ़ कर भट्ठी में पका दिया।

'मिट्टीकूल' के ऊपरी भाग में 20 लीटर पानी का भण्डारण किया जा सकता है, जबकि निचले भाग में फल, सब्ज़ी और दूध रखने के लिए अलग स्थान बना है। इस ब्राऊन फ्रिज में जल के लिए एक प्रवेशमार्ग है, जिसे आंतरिक पाइप द्वारा परिचालित किया जाता है, जिससे तापमान ठंडा रहता है। इससे सब्ज़ियाँ तथा फल लगभग पाँच दिन तक ताज़े रहते हैं, जबकि दूध को तीन दिनों तक परिरक्षित रखा जा सकता है। उनका आविष्कार अद्वितीय व सस्ता है तथा इसमें क्लोरो फ़्लूरो कार्बन (सी.एफ़.सी.) का कोई नि:स्राव नहीं होता।

– *यंग इनटैक*

अंक 6, संख्या 3, जुलाई–सितंबर 2009

शिल्प क्षेत्र में उत्पाद डिज़ाइन और विपणन को विकास की एकीकृत प्रक्रिया के प्रथम चरण के रूप में देखा जाना चाहिए। देश के समस्त शिल्पकारों से इस प्रकार की सेवाओं की अपेक्षा बढ़ती जा रही है, जो अपने नए उपभोक्ताओं के बारे में और उन नयी धाराओं के बारे में जानकारी चाहते हैं, जिनकी समसामयिक जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

सरकार एवं गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा शुरू की गई बहुत सी अर्थपूर्ण परियाजनाएँ निष्फल हो जाती हैं क्योंकि उनमें डिज़ाइन एवं शिल्प उत्पाद के विकास में शिल्प समुदाय के स्वास्थ्य को महत्त्व देते हुए परिपूर्ण रूप में देखे जाने की आवश्यकता पर बल नहीं दिया जाता।

शिल्प एवं आय वृद्धि की योजनाएँ

यद्यपि कई सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाओं को पता चल गया है कि पारंपरिक शिल्प आय सर्जन का साधन हो सकते हैं, तथापि ऐसी योजनाएँ सदैव शिल्पकार तथा उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं अथवा बाज़ार के किसी विश्लेषण के प्रति संवेदनशील नहीं होतीं।

चूँकि भारतीय शिल्पों के लिए पर्यटन तथा निर्यात माँग बढ़ गई है, बिचौलियों तथा व्यापारियों ने, जिनमें से कई अज्ञानी तथा शोषणकारी हैं, शिल्प उत्पादन तथा बिक्री शुरू कर दी है। इसके परिणामस्वरूप अनेक जटिल तथा असामान्य कला स्वरूप तथा कौशलों को हानि पहुँची है तथा वे बाज़ार से विलुप्त हो गए हैं। व्यापारी तथा बिचौलिए सस्ती वस्तुओं के त्वरित उत्पादन की माँग करते हैं, ताकि उन्हें अधिक लाभ हो। उन्हें इस बात से कोई सरोकार नहीं होता कि इससे शिल्प परंपरा तथा समुदाय पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

© NCERT not to be republished

टसर की कहानी

अच्छे विचार तथा अच्छे इरादे ही वांछित परिणाम सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त नहीं होते। कुछ वर्ष पूर्व उधार देने वाली एक संस्था ने टसर बुनकरों के साथ कार्यरत एक गैर-सरकारी संगठन के लिए एक डिज़ाइन परियोजना का निष्पादन करने के लिए एक योग्य युवा डिज़ाइनर को नियुक्त किया। उसने उच्च फ़ैशन वाले पश्चिमी परिधानों की एक लुभावनी शृंखला को विकसित किया, जिसे दिल्ली में एक महत्त्वपूर्ण प्रदर्शनी में प्रदर्शित किया गया।

किंतु उत्पादक समूह – जनजातीय महिलाएँ, जो ग्रामीण बिहार में गांधी आश्रम का भाग थीं – उनके पास अपेक्षित दर्ज़ीगिरी के कौशल नहीं थे, जिससे वे माँग की पूर्ति न कर सकीं तथा चार लाख रुपए से अधिक का पूर्ण निवेश त्रासदी में रूपांतरित हो गया।

आश्रम की महिलाओं ने अनबिके नमूनों के ढेरों, जो सभी अब पुराने, सिल्वट भरे तथा दुकान में गंदे हो चुके थे, उनकी रियायती बिक्री करने का प्रयास करते हुए मेलों तथा बाज़ारों में भाग लेना जारी रखा तथा अंततः कार्यक्रम को पूर्णतया बंद कर दिया गया।

आज, विशेष समुदाय क्षेत्रों के लिए भिन्न तकनीकों, कौशलों, नमूनों इत्यादि को नयी वस्तुओं के उत्पादन में विलय कर दिया गया है। एक समय था, जब भारत के प्रत्येक प्रदेश का अपना अद्वितीय तथा प्रामाणिक डिज़ाइन था, चाहे वह उसके द्वारा उत्पादित किए जाने वाले वस्त्रों में हो या बर्तनों में। अंतरराष्ट्रीय बाज़ार के लिए उत्पादों का सृजन करने के उद्देश्य से व्यापारी अक्सर शिल्प समुदायों को ऐसे डिज़ाइनों का विलय करने के लिए विवश करते हैं, जो किसी अन्य प्रदेश में लोकप्रिय माने जाते हैं। पैचवर्क तथा इक्कत की शुरुआत ऐसे स्थानों पर की गई है, जहाँ यह कौशल कभी विद्यमान ही नहीं था।

भारत में घरों में दैनंदिन प्रयोग हेतु विभिन्न उपयोगी शिल्प वस्तुओं का व्यापक उत्पादन होता था। इस क्षेत्र को भी हानि पहुँची क्योंकि कारीगरों को अपने समुदाय से बाहर के ग्राहकों के लिए अधिक आकर्षक, दिखने में सुंदर, आलंकारिक उत्पाद उत्पादित करने के लिए विवश किया गया।

© NCERT not to be republished

इसकी विपरीत स्थिति भी सही है। 'काँच कार्य' तथा 'कच्छी भारत' के जातिगत नाम के तहत गलियों व मेलों में बेची जा रही सस्ती स्कर्टों तथा मेलों का उस असाधारण कढ़ाई के साथ नगण्य संबंध है, जो विभिन्न कच्छी समुदाय अपने स्वयं के लिए या अपने संभावी ग्राहकों के लिए बनाते हैं। यह केवल सौंदर्यजनक त्रासदी नहीं है, बल्कि निकृष्ट आर्थिकी भी है। उच्च स्तरीय कौशलों तथा अर्जनशक्ति वाली सैकड़ों महिलाओं को आजीविका अर्जन हेतु पत्थर तोड़ने पड़ते हैं, जबकि उनकी दादी-नानी द्वारा बनाई गई पुराकालीन वस्तुएँ शहरों के बुटीकों में काफ़ी महँगे दामों पर बेची जाती हैं।

वर्ष 1991 में भारतीय शिल्प परिषद् की शिल्पों संबंधी एक संगोष्ठी में रीमा नानावटी ने सूखाग्रस्त बाँसकांठा में सेवा परियोजना का आरंभ याद करते हुए कहा, ''किंतु जल से भी पहले महिलाओं की मुख्य समस्या काम थी। जब कभी भी आप महिलाओं से बात करते हैं, उनके द्वारा पूछा जाने वाला प्रथम प्रश्न कार्य के बारे में होता है। हरेक अन्य बात गौण है।'' आज उनके द्वारा बेची जाने वाली पुरानी कढ़ाई की कलाकृतियाँ समकालिक परिधानों के लिए डिज़ाइन प्रेरक हैं, जिनसे शिल्पकार महिलाओं को प्रतिमाह ₹1000 से ₹1200 की आय होती है।

लोग अक्सर पूछते हैं — भारतीय शिल्पकार अब उसी प्रकार की सुंदर वस्तुएँ क्यों नहीं बनाते, जैसी वे पहले बनाया करते थे? इसका कारण यह है कि शिल्पकार नमूनों का रखरखाव तथा परिरक्षण नहीं कर सकते। इसलिए उन्होंने कभी नहीं देखा है कि उनके पूर्वज क्या बनाते थे। शिल्पकारों के लिए शिल्पों का अध्ययन, प्रलेखन तथा अनुसंधान, डिज़ाइन केंद्रों का सृजन, शिल्प डाटा बैंक आदि का विकास करने की आवश्यकता है, ताकि वे भविष्य के लिए प्रेरणा हासिल करने हेतु अपने विगत को कुरेद सकें। शिल्प परंपरा के मोटिफ़ तथा प्रयोग स्थायी नहीं रह सकते तथा न ही वे स्थायी रहने चाहिए, किंतु उन्हें बदलने के लिए जानकारी, संवेदनशीलता तथा सावधानी की

© NCERT not to be republished

आवश्यकता है। शिल्प कार्यक्रम के एन.आई.डी. विद्यार्थी प्रलेखन तथा इस पाठ्यक्रम के प्रलेखन अभ्यास एक मूल्यवान संदर्भ स्रोत हो सकते हैं। शिल्प विकास में एक अनिवार्य साधन यह है कि मोटिफ़, डिज़ाइनों तथा तकनीकों का प्रलेखन किया जाए तथा वे सहज सुगम्य हों।

कारीगरों के पास जो है, वह केवल उनके दिमाग तथा अंगुलियों में होता है। यदि किसी करीगर को सैकड़ों पेपर मैशी के बक्सों पर मुगल गुलाब के स्थान पर मिकी माउस पेंट करने का एक बड़ा आदेश प्राप्त होता है, तो अंतत: गुलाब की स्मृति मिट जाएगी। शिल्पकार में किसी व्यापारी या बिचौलिए को 'न' कहने का आत्मविश्वास नहीं होता। उसे क्रयादेश की आवश्यकता बहुत अधिक होती है क्योंकि उसके परिवार की आजीविका उस पर निर्भर करती है।

अत: यह गैर-सरकारी संगठन अथवा शिल्प विकासकर्ता की भूमिका तथा उत्तरदायित्व होना चाहिए कि वे शिल्प समुदायों को अपने स्वयं की विरासत संग्रहालय संग्रहणों तथा संदर्भ पुस्तकों का अध्ययन करने में समर्थ बनाएँ तथा शिल्पकार के लिए उसकी अपनी परंपरा के बारे में सुग्राही व्याख्या करें। यह हमारा भी उत्तरदायित्व है।

मधुबनी परियोजना

भारत का एक निर्धनतम, सर्वाधिक पिछड़ा भाग यानी उत्तरी बिहार स्थित मिथिला इस बात का उदाहरण है कि कैसे वहाँ के चित्रकारों ने मधुबनी चित्रकला की अपनी मोटिफ़ परंपरा का प्रलेखन करने की प्रक्रिया के माध्यम से पारंपरिक शिल्प के कार्य को बदला, उसके डिज़ाइन को परिवर्तित किया तथा उसके लिए एक समुचित, यद्यपि आमूलत: भिन्न उपयोग भी तलाशा।

1960 के दशक में खोजी गई मिथिला की धार्मिक चित्रकला हस्तनिर्मित कागज़ पर ग्राम दीवारों पर अंतरित की गई तथा वह उसी क्षण एक सफलता बन गई। ये चित्र समकालिक शहरी भारतीय घरों में तेज़ी से लोकप्रिय हो गए। उत्सुक व्यापारियों तथा निर्यातकों ने कौशल तथा कलात्मकता के हर स्तर की ग्रामीण महिलाओं को कृषि छोड़ने तथा कागज़ पर मधुबनी चित्रकला को थोक में उतारने हेतु कूची उठाने के लिए विवश कर दिया।

अनिवार्यत: इससे आधिक्य हो गया तथा बाज़ार में प्रत्येक आकार तथा रंग के मधुबनी चित्रों की बाढ़ आ गई। बीस वर्ष पश्चात् 1980 के दशक तक एक विपणन योग्य वस्तु के रूप में मधुबनी चित्रों की महत्ता समाप्त हो चुकी थी। महिला चित्रकार, जिन्होंने अपने कागज़ के चित्रों की बिक्री के ज़रिए आर्थिक स्वतंत्रता के आनंद का अनुभव किया था, अब नहीं जानती थीं कि वे क्या करें! इस सृजनात्मक स्रोत का दोहन करने के नए तरीके ढूँढ़ने की आवश्यकता थी। उनके कलात्मक कार्यों में दैनिक प्रयोग तथा पहनावे की वस्तुओं में आलंकारिक मोटिफ़ों, फूलदार किनारों, मोर व तोतों, इंटरलॉकिंग सितारों तथा चक्रों से भरे डिज़ाइन मोटिफ़ों की भरमार थी। उन्होंने साड़ियों, दुपट्टों, फ़र्नीशिंग के कपड़े पर चित्रकारी की तथा कल्पनात्मक तरीकों से अपने शिल्प को बढ़ाने के प्रयास किए।

– पुपुल जयकर
दि अर्दन ड्रम

शिल्प विकास का प्रयोजन

शिल्पकार का सर्वतोमुखी विकास करना तथा उसे आत्मनिर्भर बनाना ही अंतिम उद्देश्य है।

- विकास प्रक्रिया लक्षित शिल्प समूह के विद्यमान कौशल स्तरों के समनुरूप होनी चाहिए।
- डिज़ाइनरों को एक या अधिक पुरस्कृत शिल्पकारों के साथ कार्य करना होगा, ताकि उत्पादन की गुणवत्ता सुनिश्चित की जा सकें।
- समुदाय में कौशलों तथा डिज़ाइन संवेदनीयताओं का क्रमिक रूप से उन्नयन करने के लिए प्रति वर्ष अनुक्रमिक सैंपलिंग कार्यशाला का आयोजन किया जाना चाहिए।

रणथंभौर, राजस्थान में शिल्प केंद्र परियोजना में, जिन महिलाओं ने काम करना शुरू किया था, वे लगभग अकुशल थीं – उनके हाथ सुई के बजाए खुरपा उठाने के अधिक अभ्यस्त थे। प्रथम पैचवर्क उत्पाद रंगों तथा प्रिंटों के चटकीले तथा असामान्य संयोजनों से बने थे, जिससे सिलाई की कुरूपता तथा डिज़ाइन की सरलता ढँक गई थी। इन साधारण उत्पादों की अच्छी बिक्री हुई तथा धीरे-धीरे महिलाओं को अपने कौशलों में सुधार लाने, अपेक्षाकृत परिष्कृत कार्य का सृजन करने तथा नए उत्पादों का विकास करने के लिए प्रशिक्षित किया गया है।

© NCERT not to be republished

एन.आई.डी. समस्या समाधान विधि

दक्षिण भारत में बुनकरों के एक समुदाय को भारी हानि हुई, जब उनके पारंपरिक कौशलों को मिल निर्मित बड़े पैमाने पर उत्पादित कपड़ों के साथ प्रतिस्पर्धा करनी पड़ी। अतिरिक्त समस्याएँ भी उठीं क्योंकि उनके उपकरण तथा प्रौद्योगिकी बाहरी स्थलों पर निर्भर थे। इसका अर्थ था कि बुनकर मानसूनी वर्षा की लंबी ऋतु के दौरान बेकार रहते थे।

इस समुदाय के लिए अभिज्ञात किए गए डिज़ाइन समाधान नए बाज़ारों तक पहुँचने के लिए उत्पाद विविधीकरण, नए अनुप्रयोगों में पारंपरिक डिज़ाइन के पुनरुज्जीवन के थे। दूसरे, उन्हें अपने साधनों, औज़ारों, कार्यस्थलों तथा उत्पादन तकनीकों को पुन:डिज़ाइन करना था, ताकि बुनाई करघों को अंदरूनी स्थलों में ले जाया जाए और इस प्रकार पूरे वर्ष क्रियाकलाप सुकर हो।

प्रभावी डिज़ाइन तथा विकास निविष्टियाँ

एक लघु बजट का तथा सीमित संसाधनों का प्रयोग करते हुए एक साधारण किंतु प्रभावी डिज़ाइन का सृजन करना डिज़ाइनर कौशल का एक उत्साहवर्धक परीक्षण है। नव उदीयमान शिल्प समुदाय द्वारा उन उत्पादों को, जिन्हें ऐसे कौशलों का प्रयोग करके, जिनके होने की जानकारी उन्हें स्वयं भी नहीं थी, उन्होंने पहली बार स्वयं बनाया था। उन्हें सफलतापूर्वक बेचने में उनकी संवृद्धि तथा विश्वास को देखना और भी अधिक रोमांचक है। शिल्प विकास के मुख्य सिद्धांत निम्नलिखित हैं–

1. बनावट के अनुसार उत्पाद का मूल्य, सौंदर्यपरकता तथा कार्य प्रतिस्पर्धा होनी चाहिए।
2. शिल्पकार को इस प्रकार सशक्त बनाना तथा प्रशिक्षित करना कि वह स्वतंत्र बन जाए।
3. शिल्प समुदाय द्वारा सृजनात्मकता तथा नवप्रवर्तन उत्पाद डिज़ाइन हेतु विचार तथा प्रेरणा उपलब्ध कराना।
4. बाज़ार बलों द्वारा निर्धारित दिशानिर्देशों तथा विकसित वस्तुओं के पीछे तर्काधार को स्पष्ट करना।
5. एक ऐसी उत्पाद शृंखला का विकास करना, जिसमें समूह के सभी सदस्यों के विभिन्न कौशल स्तर समाहित हों।
6. उत्पाद प्रयोग तथा कीमत को व्यापकतम संभव बाज़ार तथा उपभोक्ता के लिए प्रयोग करने योग्य रखना।
7. नए उत्पादों के डिज़ाइन में सुमेलतापूर्व पारस्परिक मोटिफ़ों, तकनीकों तथा आकारों को समाहित करना।
8. सौंदर्यपरक संवेदनीयताओं का विकास सुनिश्चित करना, ताकि शिल्प डिज़ाइन नकल न रहें अथवा स्थायी न रहें, बल्कि निरंतर परंपरा को नवप्रवर्तन के साथ समामेलित करके विकसित होते रहें।

© NCERT not to be republished

सेवा, लखनऊ

समुदाय से बाहर के हस्तक्षेप उन डिज़ाइनरों द्वारा थे, जो प्रशिक्षित थे तथा समुदाय के साथ काम करते थे। उनकी निविष्टियाँ इस प्रकार थीं–

- पारंपरिक कढ़ाई के नमूनों, टाँकों, और सिलाई की तकनीकों का पुनरुत्थान एवं प्रलेखन करना, कुर्ते की समकालीन तरीके से कटाई और साइज़ में बनाना तथा नए बूटे काढ़ना
- शिल्पकारों के इस समुदाय के कौशलों का उन्नयन
- नए प्रकार के कच्चे माल (कोटा से टसर तक) का उपयोग
- विपणन के विभिन्न मुद्दों, जैसे दाम, गुणवत्ता और उत्पाद की योजना बनाना और एक वैकल्पिक विपणन और संवर्धन नीति निर्धारित करना, जिससे एक छोटी गैर-सरकारी संस्था स्वयं में परिपूर्ण और पर्याप्त हो। गुणवत्ता नियंत्रण एवं बाज़ार शक्तियाँ

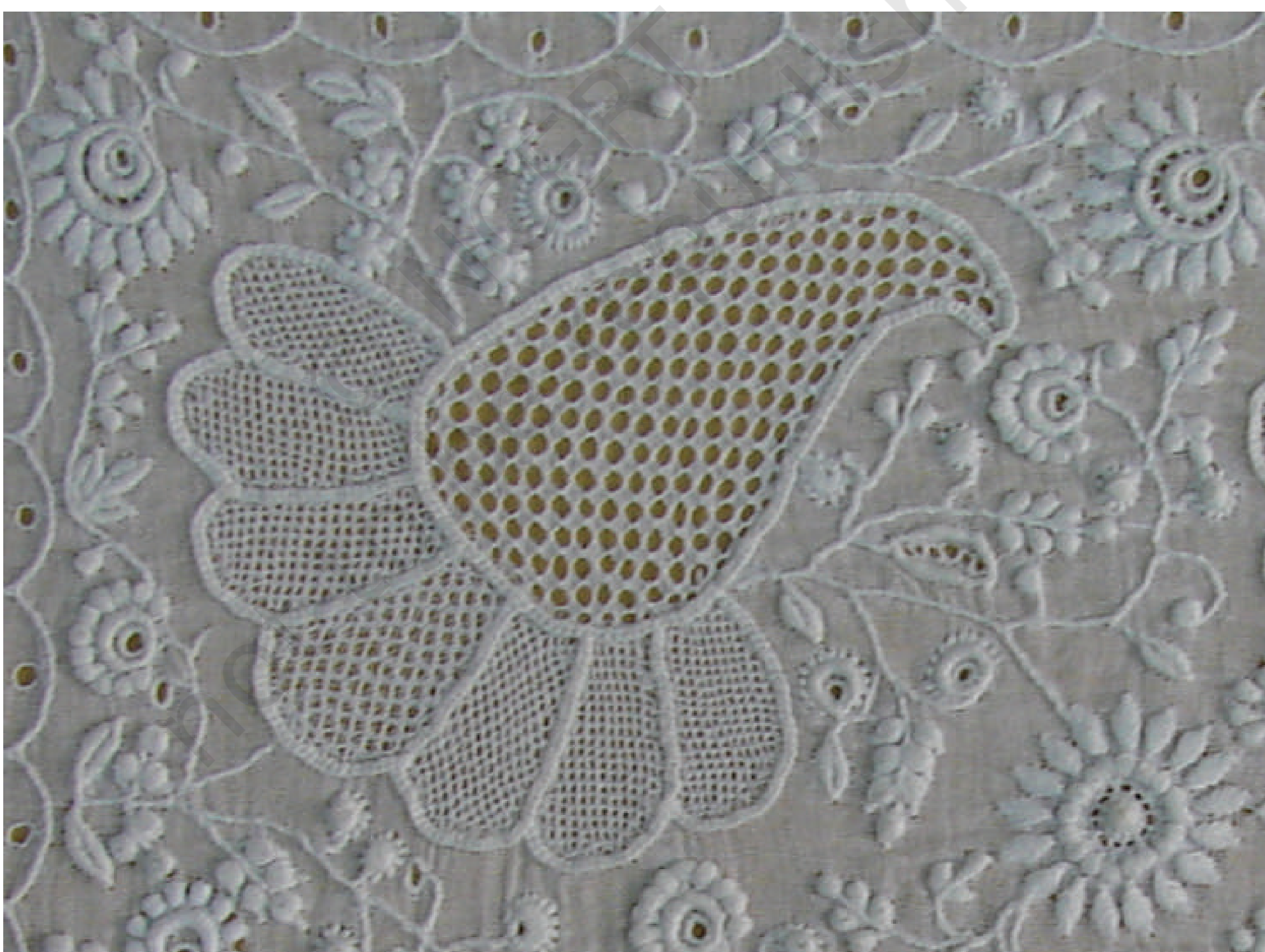

गुणवत्ता नियंत्रण एवं बाज़ार शक्तियाँ

अपने अतीत और भविष्य के बीच फँसे शिल्पकारों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है और वे हाशिए की ओर चले जा रहे हैं तथा उन्हें लगभग भुला दिया गया है। शोध और विकास, कच्चा माल, कार्य और आधारभूत सुविधाएँ, जो अन्य औद्योगिक क्षेत्रों में स्वत: दे दी जाती हैं, शिल्पकला में प्राय: निवेश नहीं किया जाता और वे उपलब्ध भी नहीं होतीं।

ग्रामीण एवं जनजाति के लोगों द्वारा बनाए गए शिल्प को प्राय: सजावटी और थोड़े समय के लिए प्रयोग किया जाने वाला कह कर टरका दिया जाता है। अक्सर ग्राहक तकनीकी कारणों से वस्तु के सुंदर न लगने के कारण खरीदने से इनकार नहीं करते, बल्कि बनाने में लगे हुए माल की गुणवत्ता के कारण नहीं खरीदते। यह एक ऐसा तथ्य है, जिस पर शिल्पकार का कोई नियंत्रण नहीं होता। रंग-बिरंगे धागे, ज़ंग-निरोधक जोड़ एवं बकल, परिपक्व चमड़ा, न सिकुड़ने वाला कपड़ा इत्यादि ग्रामीण बाज़ारों में उपलब्ध नहीं है, जिसका प्रयोग भारतीय शिल्पकार वस्तु-निर्माण में कर सकें। इस समस्या को शीघ्र उद्‌बोधित करने की आवश्यकता है, जिससे आधारभूत सुविधाएँ, कच्चा माल और अच्छा सामान शिल्पकारों को प्राप्त हो सके। अन्यथा आने वाले समय में भारत में किसी भी प्रकार का पारंपरिक शिल्प नहीं बचेगा।

डिज़ाइनर के लिए यह भी आवश्यक है कि वे ग्राहकों की बदलती हुई रुचि की विशेषताओं, खासकर निर्यात को ध्यान में रखें–

1. हस्तशिल्प वस्तुओं की सामान्यत: उच्च कीमत कई बार उनकी बिक्री में एक बाधा बन जाती है। अधिकतम बिक्री हासिल करने के लिए विभिन्न मूल्य श्रेणियों में मदों को डिज़ाइन किया जाना चाहिए। हस्तनिर्मित उत्पादों के लिए सर्वोत्तम इकाई कीमत प्राप्त करने के प्रयास किए जाने चाहिए।
2. संरचनात्मक मज़बूती के बिना अत्यधिक अलंकृत सतह असंतोषजनक है। अत: परिष्कृत आलंकारिक मदों, विशेषत: पारंपरिक डिज़ाइनों की नकल की माँग सदैव थोड़ी होती है, एक समकालिक उपभोक्ता कम विस्तृत पैटर्नों तथा सरलतम स्वरूपों को वरीयता देगा।
3. समकालिक उपभोक्ता अक्सर धार्मिक विषयों तथा चिह्नों के प्रति संवेदनशील या अनुक्रियाशील नहीं होता, जिसका सामान्यत: पारंपरिक शिल्प डिज़ाइन पर आधिपत्य है। उपभोक्ता को उपयोगिता के अनुपूरण के रूप में सौंदर्य की आकांक्षा होती है। अत: अच्छी दिखने

© NCERT not to be republished

वाली, सुरुचिपूर्ण ढंग से अभिकल्पित कार्यात्मक मदों की माँग बढ़ती रहती है।

4. आज महँगी सामग्री के प्रयोग पर बहुत कम ज़ोर दिया जाता है। यही कारण है कि सुरुचिपूर्ण शैली में निर्मित नकली आभूषणों ने विशुद्ध स्वर्ण तथा चाँदी के आभूषणों का स्थान ले लिया है। साथ ही मिट्टी, घास, पत्थर, लकड़ी तथा चर्म जैसी प्राकृतिक सामग्रियों में रुचि बढ़ रही है तथा इनसे निर्मित हस्तशिल्प अधिक लोकप्रिय होंगे।
5. कुछ मामलों में विवेकी उपभोक्ता आधुनिक डिज़ाइनों को पसंद करते हैं। इससे डिज़ाइनरों तथा शिल्प समुदायों को प्रोत्साहन भी मिलेगा।

शिल्प विकास के प्रति एकीकृत दृष्टिकोण

शिल्प समुदाय के विद्यमान रहने एवं आर्थिक सशक्ति के लिए डिज़ाइन एवं उत्पाद के विकास की निविष्टियाँ आवश्यक हैं। शिल्पकारिता एक प्रकार का संचार है – एक व्यक्ति द्वारा अन्य की आवश्यकताओं की समझ और इसकी पूर्ति के लिए रचनात्मक आवेग और कौशल का प्रयोग करके उस आवश्यकता की पूर्ति करना। यह तब तक संभव नहीं होगा, जब तक समकालीन ग्रामीण शिल्पकार शहरी ग्राहकों की भाषा नहीं समझेगा। एक बार उसे सीखकर डिज़ाइन के माध्यम से एक नयी भाषा विकसित की जा सकती है, जो केवल उनके शिल्प ही नहीं, बल्कि जीवन पर भी लागू होगी।

रवींद्रनाथ टैगोर का यह वाक्य भी हमें यही याद दिलाता है – 'मस्तिष्क किसी भी प्रकार से सूती धागे से कम मूल्यवान नहीं है।'

अभ्यास

1. अपने क्षेत्र के किसी शिल्प समुदाय विशेष के जीवन स्तर को उठाने के लिए एक समेकित योजना का विकास करें।
2. हस्तशिल्पों की परंपरा जीवित रखने के लिए डिज़ाइन एवं विकास क्यों आवश्यक है?
3. निरंतर विकासमान 'बॉलीवुड' उद्योग में शिल्प वस्तुओं की माँग को बढ़ाने के लिए एक नीति बनाइए।
4. नवाचार के माध्यम से उत्साही उद्यमी वैश्विक बाज़ार में पहुँच रहे हैं। उदाहरणार्थ, चेन्नै की तीन दुकानें भरतनाट्यम् के लिए प्रयोग में आने वाली वस्तुएँ विश्व के विभिन्न भागों में भरतनाट्यम् के बढ़ते हुए नर्तकों तक पहुँचाती हैं। शिल्प का उत्पादन एवं विपणन करने वाले एक उद्यमी के रूप में अपने सपनों की ऐसी ही परियोजना की रूपरेखा प्रस्तुत करें।
5. 'समसामयिक जीवन की आवश्यकताओं' पर शोध करें। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शिल्प को किस प्रकार बनाया और बेचा जा सकता है?

© NCERT not to be republished

परिशिष्ट

भारतीय हस्तकला का उत्कृष्ट खज़ाना

राष्ट्रीय हस्तशिल्प एवं हथकरघा संग्रहालय

1972 में नयी दिल्ली के प्रदर्शनी स्थल, प्रगति मैदान में एक ग्रामीण परिसर की स्थापना हुई, जो शिल्प संग्रहालय (क्राफ़्ट्स म्यूज़ियम) के नाम से जाना जाता है। यह संग्रहालय उन सभी शिल्पकारों और कलाकारों को समर्पित है, जिन्होंने अनेक शताब्दियों से भारतीय शिल्पकला की परंपरा को जीवंत रखा है। देश के विभिन्न भागों के ग्रामीण–गृहों की छोटी अनुकृतियाँ, कपड़ों और मुखौटों की प्रदर्शन दीर्घाएँ और शिल्पों के प्रदर्शन क्षेत्र इस संग्रहालय की मुख्य विशेषताएँ हैं। http://www.nationalcraftsmuseum.nic.in

भारतीय कला का आशुतोष संग्रहालय

महान शिक्षाविद् सर आशुतोष मुखर्जी के नाम पर 1937 में कोलकाता के विश्वविद्यालय परिसर में पश्चिम बंगाल के शिल्पों के प्रदर्शन के लिए एक संग्रहालय की स्थापना हुई। पहले के कालों में बने शिल्प के अतिरिक्त इसमें बंगाल में आज बनाए और प्रयोग में लाए जाने वाली शिल्प वस्तुएँ भी प्रदर्शित की गई हैं। प्रदर्शित किए शिल्प में खिलौने और गुड़ियों का भी संग्रह है। दीवारों पर रंगीन पट्टचित्र प्रदर्शित हैं, जिन्हें किसी समय कथाकार प्रयोग में लाते थे। पश्चिम बंगाल और बांग्लादेश के जाने–माने कपड़ों का भी प्रदर्शन यहाँ देखने को मिलता है। http://www.asiarooms.com

कैलिको वस्त्र संग्रहालय

यह भारत के विशिष्ट संग्रहालयों में से एक है। इस संग्रहालय की स्थापना 1949 में गीरा साराभाई द्वारा अहमदाबाद में की गई, जिन्होंने देश के विभिन्न भागों से दुर्लभ, ऐतिहासिक और उत्कृष्ट कपड़ों का संग्रह किया था। राजधानी अहमदाबाद सहित गुजरात राज्य कपड़ा उत्पादन का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र रहा है। http://www.calicomuseum.com

सालार जंग संग्रहालय

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में हैदराबाद के निज़ाम शासक ने एक प्रधान मंत्री नियुक्त किया था, जिसे सालार जंग की उपाधि दी गई। सालार जंग के पुत्र, सालार जंग द्वितीय एवं पौत्र सालार जंग तृतीय भी शासकों द्वारा प्रधान मंत्री नियुक्त किए गए। इन तीनों व्यक्तियों के संग्रह आज हैदराबाद के सालार जंग संग्रहालय में रखे गए हैं। 1958 में यह संग्रह भारत सरकार को सौंपा गया और 1968 में यह संग्रहालय वर्तमान इमारत में स्थापित किया गया। यह संग्रहालय अपने यूरोपीय कला संग्रह और भारतीय कलाकृतियों की भारी विविधता और गुणात्मकता के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ हरिताश्म (जेड), आयुध, कपड़ा और धातु सामग्री जैसी महत्त्वपूर्ण वस्तुओं का संग्रह है, जिनसे मुगल काल के बाद के दरबारी जीवन की झलकियाँ मिलती हैं और उस समय की संपन्नता और वैभव का प्रदर्शन होता है।

http://www.salarjungmuseum.in/home.asp

राजा दिनकर केलकर संग्रहालय

भारतीय कला के प्रति समर्पित स्वर्गीय राजा दिनकर केलकर का संग्रह पुणे स्थित इस संग्रहालय में रखा गया है। उन्होंने अपने जीवन के साठ वर्षों तक भारत के विभिन्न भागों में भ्रमण करते हुए, विभिन्न गाँवों और कस्बों से सामग्री खरीदी। केलकर के उत्साह और हास्य-विनोद की समझ की झलक संग्रह की प्रत्येक वस्तु में देखने को मिलती है और उनका शोध और कला के संरक्षण में योगदान सर्वविदित है।

केलकर संग्रहालय में करीब 21, 000 वस्तुएँ संगृहीत हैं, जो भारत में दैनिक जीवन से संबंधित हैं – बर्तन, दीपक, डिब्बे, सरौते, कलमदान और ऐसी अनेक वस्तुएँ, जो ग्रामीण ज़मींदारों, कृषकों, व्यापारियों और दुकानदारों के घरों में पाई जाती हैं।

मिट्टी से लेकर पीतल तक के बने तेल के विभिन्न प्रकार के दीपकों का भी यहाँ संग्रह है। भारत में दीपकों के प्राय: दो प्रकार होते हैं – धार्मिक कार्यों के लिए बनने वाले दीपक, जिन्हें आरती के लिए प्रयोग में लाया जाता है और वे दीपक, जो केवल रोशनी के लिए प्रयोग में लाए जाते हैं। दीपक प्राय: खुले मुँह वाले होते हैं, जिनमें घी या तेल डालकर कपास की बत्ती रखने के लिए बनाया जाता है। मोर, लक्ष्मी, हाथी और पक्षी जैसे पवित्र प्रतीकों से इन दीपकों को सजाया भी गया है। बड़े पीतल के दीपक, जो मोटी कड़ियों से लटकाए जाते हैं और घरों और मंदिरों में खड़े किए जाने वाले लंबे दीपक भी यहाँ हैं।

http://www.rajakelkarmuseum.com

© NCERT not to be republished

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मानव संग्रहालय

भारत के एक बड़े राज्य मध्य प्रदेश में अनेक जनजातियाँ निवास करती हैं। उनकी जीवन शैली को सम्मानित करने के लिए हाल ही में वहाँ की राजधानी भोपाल में यह मानव संग्रहालय स्थापित किया गया। कई एकड़ के क्षेत्र में फैले इस खुले संग्रहालय में एक परिसर में जनजातीय घर बनाए गए हैं, जो देश के विभिन्न भागों में रहने वाली जनजातियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। बंद दीर्घाओं में घरों में प्रतिदिन काम में आने वाली वस्तुएँ प्रदर्शित हैं। हस्तनिर्मित वस्तुओं में काँसे और मिट्टी की बनी वस्तुओं से लेकर खिलौने तथा धार्मिक कार्यों में प्रयोग में आने वाली वस्तुएँ भी हैं। भारत में दैनिक जीवन में काम आने वाली वस्तुएँ, जैसी कि आज भी विद्यमान हैं, रुचिकर हैं। उनमें एक ऐसी ताज़गी और सहजता है, जिसका आनंद हर व्यक्ति उठा सकता है। http://www.igrms.com

© NCERT not to be republished